Library IIAS, Shimla
H 294.562 9 Au 68 S
00099612

श्रीअरविंद

सप्त चतुष्टय

H
294.562 9 Au 68
S

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

श्रीअरविंद

सप्त चतुष्टय

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

CATALOGUED

Library IIAS, Shimla
H 294.562 9 Au 68 S
00099612

H
294.5629
Au 68 S

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 99612
DATE 4-12-2002
SHIMLA

मूल्य रु. ४.००

प्रथम संस्करण : १९८५

© श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट १९८५

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२ (भारत)

विषय सूची

श्रीअरविंदके लिखे संस्कृत मंत्र	
श्रीअरविंदका उपनिषद्	१
सप्त चतुष्टय	
१. शांति चतुष्टय	८
२. शक्ति चतुष्टय	१२
३. विज्ञान चतुष्टय	२०
४. शरीर-चतुष्टय	३२
५. कर्म-चतुष्टय या लीला-चतुष्टय	३३
६. ब्रह्म-चतुष्टय	३३
७. योग-चतुष्टय या संसिद्धि-चतुष्टय	३३

श्रीअरविंदके लिखे संस्कृत मंत्र

ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

OM anandamayi chaitanyamayi parame

OM Tat Sat Jyotir Aravenda

ॐ तत् सत् ज्योतिररविन्द

OM Satyam, jnānam jyotir Aravenda

ॐ सत्यं, ज्ञानं, ज्योतिररविन्द

तत्सवितुर् वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि ।

यन्नः सत्येन दीपयेत् ॥

सावित्रीके परम कल्याणकारी (सर्वश्रेष्ठ) रूपका, परम पुरुषकी ज्योतिका हम ध्यान करें। यह ज्योति हमें सत्यसे आलोकित करे।

श्रीअरविंदका उपनिषद्

ॐ। ब्रह्म एक है और अद्वितीय है। वही सत् है, वही असत् है और सत् और असत्से परे भी वही है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो कुछ तीनों कालोंमें है या तीनों कालोंसे परे है, सब कुछ वही एक ब्रह्म है। इस जगत्में जो कुछ भी है अणु या महान्, श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ, वह ब्रह्म ही है। यह जगत् भी ब्रह्म ही है, ब्रह्म सत्य है, मिथ्या नहीं।

वही ब्रह्म परात्पर पुरुष है। वह तीनों कालोंसे परे है, सभी जगतोंसे परे भी है और सभी जगतोंमें समाया हुआ भी है। वह सत्से भी परे है और असत्से भी परे। वह सन्मय है, चिन्मय है, आनन्दमय है। उसका न आरंभ है न अन्त है। वह है सनातन भगवान्।

वह गुणरहित है फिर भी सभी गुणोंको धारण करता है। सगुण और अनंतगुणवाला वह निर्गुणताका भोग करता है। वह अपने-आप निर्गुणता और सगुणताके परे है। न वह निर्गुण है न गुणी। वह वही है जो 'केवल' है।

भुवनोंसे परे वह सभी भुवनोंको अपने अंदर समाये रहता है। अपने-आप ही भुवन वनकर भुवनोंमें प्रवेश करता है। वही कालसे परे, काल बनता है। विद्या-अविद्यामयी चित् शक्तिके द्वारा वह अनंत होते हुए भी सांत दिखता है, एक होते हुए भी अनेक लगता है, रूपहीन होकर भी रूपवान्की तरह दिखायी देता है।

वह अपने-आप न धारण करनेवाला है न ही उसे कोई धारण करता है, न वह अनंत है न सांत, न वह एक है न अनेक, न वह रूपहीन है न रूपवान्। वह वही है जो 'केवल' है।

एकत्व, वहुत्व, अनंत और सांत ये सब वस नाम हैं जो ऐसे चिन्मय जगत्में प्रकाशित होते हैं जो अपने-आप चिदात्मरूपी है।

ॐ। वह ब्रह्म सत् है, जो सत् है वही चित् है। चिदात्मरूपी

उस ब्रह्ममें यह चिन्मय जगत् दीखता है। यह सच्चे भगवान्का सच्चा प्रकाश है।

जिस तरह शांत पानीमें सूरजकी परछाईं एक होती है और चंचल पानीमें अनेक, सूर्य भी सत्य है और उसकी परछाईं भी सत्य है; वह सच्चे सूर्यका सच्चा प्रकाश है, स्वप्न नहीं है, वह सत्यका ही प्रकाश है। या जिस तरह सूर्यकी ज्योति दौड़ती हुई-सी, सारे सौर जगत्को अपनी शक्तिसे भरती हुई चमकती है, ज्योति सच्ची है, वह सच्चे सूर्यका सच्चा प्रकाश है, वह मिथ्या प्रकाश नहीं है, वह तो सत्यका सच्चा प्रकाश है। या जिस तरह सूर्यका ज्वालामय बिम्ब अपने-आप सूर्य नहीं है बल्कि भौतिक ज्ञानके क्षेत्रमें सूर्यका सूर्यत्व अपने-आपको भौतिक रूपमें प्रकट करता है, क्योंकि सूर्य तो उस रूपसे परे है, सूर्य भी सच्चा है और उसका वह गोलाकार रूप भी सच्चा है, वह सच्चे सूर्यका सच्चा प्रकाश ही है, वह माया नहीं है, वह सत्यका सच्चा प्रकाश है, उसी तरह यहां यह जगत्-ब्रह्म भगवान्का ही सच्चा प्रकाश है, न यह सपना है, न माया है, न ही कोई झूठा आभास है। यह सत्यका सच्चा प्रकाश है। यह अपने-आप भगवान् नहीं है, फिर भी स्वयं वही है। यह परम माया है, योगकी महिमा है, रहस्यमय योगके ईश्वर श्रीकृष्णकी चित् शक्तिके द्वारा होनेवाली आनंदमयी लीला है, उस परमकी ऐसी गति है जिसके बारेमें तर्क नहीं किया जा सकता।

यह सारा जगत् व्यावहारिक रूपमें सत्य है, परमार्थ रूपमें असत्य है, यह बात मनके संतोष या विशेष रूपसे जाननेके लिए कही जा सकती है लेकिन सचमुच सत्य ब्रह्ममें असत्य कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार दीखता हुआ यह जगत् आनंद ही है।

ॐ। वह सत् है, जो सत् है वही चित् है, और जो चित् है वही आनंद है। जो कुछ आनंदहीन, दुःखसे भरा हुआ या कमजोर या अज्ञानसे भरा मालूम होता है वह सब आनंदका ही विकार है, आनंदका ही खेल है।

यह जो जीव है वह छिपे रूपमें आनंदमय भगवान् ही है। वह इस जगद्रूपी ब्रह्मका—जो उसकी अपनी ही अभिव्यक्ति है—उपभोग करनेके लिए नीचे उतरा है। यह जो दुःखका भोग है वह भी आनंदमय भोग है। आनंदमय भगवान् आनंदका ही भोग करता है।

निरानन्दका भोग करनेका साहस कौन कर सकता है? जो सर्व आनंदमय है वही साहस कर सकता है क्योंकि जो निरानन्द है वह आनन्दहीनका भोग करते हुए आनंदका उपभोग कर ही नहीं पायेगा और आनंदके बिना नष्ट हो जायेगा। दुर्बल कौन बन सकता है? जो सर्वशक्तिमान् है वही बन सकता है। क्योंकि दुर्बलतासे घिरा हुआ व्यक्ति टिक ही नहीं पायेगा और शक्तिके बिना नष्ट हो जायेगा। अज्ञानके अंदर जानेमें कौन समर्थ होगा, वही जो सर्वज्ञानमय है। अज्ञानी तो उस अंधेरेमें जी ही नहीं सकेगा क्योंकि असत् तो असत् ही रह जायेगा और वह ज्ञानके बिना नष्ट हो जायेगा। अज्ञान ज्ञानका खेल है जो अपने अंदर ही अपने-आपको छिपाये है। शक्तिका खेल है दुर्बलता, आनंदका खेल है निरानन्द। दोनों ही अपने अंदर अपने-आपको छिपाये हुए हैं।

आनंदके साथ जीव हंसता है, आनंदपूर्वक रोता भी है, आंसू बहाता है। अंधकारसे भरे इस आनंदमें चमकता हुआ-सा यह जीव दुःख-कष्टोंके कारण सक्रिय होता है और काम करता है और आनंदके साथ स्पंदित होता है। तीव्र सुखोंके द्वारा भी क्रियाएं करता हुआ वह आनंदपूर्वक स्पंदित होता रहता है। इस तरह उस अंधकारमय आनंदका जो तामसिक भाग है उसका पूरा-पूरा उपभोग करनेके लिए जीव तामसिक बनकर आनंदको अपने अंदर छिपाये रखता है।

इस भावका मूल अज्ञान ही है कि मैं सांत हूं, मैं दुर्बल हूं, मैं दुखी हूं, मुझे काम करना चाहिए, मुझे जानना चाहिए, मुझे प्रयासकेद्वारा, तपस्याके द्वारा, प्राणोंका बलिदान करके भी पाना चाहिए।

2

तुम वह हो, मैं यह हूं, जो तुम हो वह मैं नहीं हूं, जो तुम्हारे लिए शुभ है वह मेरे लिए अशुभ है, जिससे तुम्हारा लाभ होता है उससे मेरी हानि होती है, मैं तुम्हें मार डालूं तो मैं सुखी हो जाऊंगा, मैं सात्विक स्वभाववाला नहीं हूं जो अपने-आपको दुख देकर, अपनी हानि सहकर, अपनी मृत्युको स्वीकार करके तुम्हें सुखी बनाऊं—इत्यादि बातें उस अज्ञानका रूप हैं जो मनमें रहता है।

इसका बीज अहंकार ही है। अहंकारसे छूटनेपर ही अज्ञानसे मुक्ति मिलती है। अज्ञानसे छूटकर ही जीव दुःख-दर्दसे छूटता है। मैं आनंदमय हूं, मैं वही ब्रह्म हूं, मैं एक हूं, मैं अनंत हूं, मैं सर्व हूं—यह जानकर जीव आनंदमय हो जाता है, अपने-आप आनंद बन जाता है।

यही है मोक्ष। इस तरह मुक्त हुआ जीव सभी भोगोंका उपभोग करता है, सभी तरहके आनंदोंका अनंत रूपसे उपभोग करते हुए भी वह सांत चीजोंसे अलग नहीं हो जाता या सांत चीजोंका उपभोग करते हुए वह अनंतसे वंचित नहीं हो जाता। वह एक बन जाता है। वही अनेक भी हो जाता है। वह अजन्मा भी जन्म लेता हुआ-सा मालूम होता है। जन्म लेते हुए भी वह जन्म नहीं लेता। वह किसीसे बंधता नहीं। उसका कोई जन्म नहीं होता। अपने-आपमें, अपने-आपके द्वारा, अपने-आपको प्रकाशित कर रहा हूं—इस ज्ञानके कारण हमेशा मुक्त होते हुए भी वह क्रीड़ा करता रहता है।

भगवान्‌की लीलाके लिए है यह जगत् और आनंदके लिए है लीलामय। इसलिए, हे आनंदके पुत्रो! लीला करो। एक साथ मिलकर क्रीड़ा करो, आनंदका उपभोग करो। एकमात्र भोग्य चीज भगवान्‌को पाकर सभी चीजोंमें उनका उपभोग करो।

भगवान्‌के द्वारा आदेश पाकर मैं आनंदकी व्याख्या करूंगा। अंधेरेको हटाकर आनंद प्रकाशित हो, हे आनंदके पुत्रो!

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म

श्रीअरविन्दोपज्ञा उपनिषद्

ॐ। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म सदसद्रूपं सदसदतीतं नान्यत्किंचिदस्ति त्रिकालधृतं त्रिकालातीतं वा सर्वन्तु खलु ब्रह्मैकं यत्किञ्च जगत्यामणु वा महद्वोदारं वानुदारं वा ब्रह्मैव तद् ब्रह्मैव जगदपि ब्रह्म सत्यं न मिथ्या।

स एव परात्परः पुरुषस्त्रिकालातीतः सकलभुवनातीतः सकलभुवनप्रविष्टः सदतीतोऽसदतीतः सन्मयः चिन्मय आनन्दमयोऽनाद्यन्तः सनातनो भगवान्।

स निर्गुणो गुणान् धत्ते सगुणोऽनन्तगुणो निर्गुणत्वं भुंक्ते स्वयंचातिवर्तते निर्गुणत्वंच सगुणत्वंच न निर्गुणो न गुणी केवल एव यः।

स भुवनातीतो भुवनानि धारयति भुवनभूतो भुवनानि प्रविशति कालातीतः कालो भवत्यनन्तः सान्तः प्रकाशतः एको बहवोऽरूपो रूपी विद्याविद्यामय्या चिच्छक्त्या।

स्वयन्तु न धर्ता न धार्यो नानन्तः न सान्तो नैको न बहुः नारूपो न रूपी केवल एव यः।

सर्वाणि त्वेतानि नामानि यदेकत्वंच बहुत्वंचानन्तंच सान्तंच प्रकाशन्त एव चिदात्मनि चिन्मये जगति।

ॐ तत्सत् यच्च सच्चिदेव तच्चिन्मयं जगत् भासते चिदात्मनि सत्यप्रकाशः सत्यस्य भगवतः।

यथा सूर्यस्य प्रतिबिम्ब एकः शान्ते जले बहवश्चले सत्यः सूर्यः सत्यः प्रतिबिम्बः सत्यप्रकाशः सतः सूर्यस्य न स स्वप्नः सतः प्रकाशस्तु सः, यथा वा सूर्यस्य ज्योतिः सौरं जगत्स्वशक्त्या धावदिव पूरयत्प्रकाशते

सत्यं ज्योतिः सत्यप्रकाशः सतः सूर्यस्य न सोऽलीका भातिः सतः सत्यप्रकाशस्तु सः, यथा वा सूर्यस्य ज्वालामयं विम्वं न स्वयं सूर्यः सूर्यस्य तु सूर्यत्वं प्रकाशयत्येतदन्नमयं रूपमन्नाश्रिते ज्ञाने तद्रूपातीतस्तु सूर्यः सत्यः सूर्यः सत्यं रूपं विम्बाकृति सत्यप्रकाशः सतः सूर्यस्य न स मायान्वितः सतः सत्यप्रकाशस्तु सः, तथेह जगद्ब्रह्म सत्यप्रकाशो भगवतः न स्वप्नः न मायान्वितं नालीका भातिः सतः सत्यप्रकाशस्तु तद् न स्वयं भगवान् तथापि स्वयमेव सः। एषा परा मायैषा योगमाहात्म्यं रहस्यमयस्य योगेश्वरस्य कृष्णस्यैषा चिच्छक्त्या आनन्दमयी लीला परस्यातर्क्या गतिः।

सर्वमिदमर्थतः सत्यं परार्थतः असत्यमिति मनस्तुष्टचर्यं विज्ञानार्थमुच्यतां न हि किंचिदप्यसत्यं सत्ये ब्रह्मणि।

एवं यत्प्रकाशते जगदानन्द एव तत्।

ॐ तत्सत् यच्च सच्चिदेव तद्यच्च चित्स आनन्दः। यत्तु निरानन्दमिति भासते दुःखमिति दुर्बलमित्यज्ञानमिति तदानन्दस्य विकार आनन्दस्य क्रीडा।

यो हि जीवः स आनन्दमयः प्रच्छन्नो भगवान् स्वप्रकाशमयं जगद्ब्रह्म भोक्तुमवतीर्णः। य एष दुःखभोगः स भोग एवानन्दमयस्तस्यानन्दमेवानन्दमयो भुंक्ते।

को हि निरानन्दं भोक्तुमुत्सहेत यः सर्वानन्दमयः स एवोत्सहते निरानन्दमयस्तु निरानन्दं भुञ्जानः न भुञ्जीतानन्दं विना प्रणश्येत्। को दुर्बलो भवितुं शक्नयाद्यः सर्वशक्तिमान्स एव शक्नुयाद् दुर्बलो ह्याक्रान्तो दुर्बलत्वेन न तिष्ठेच्छक्ति विना प्रणश्येत्। को ज्ञानं प्रवेष्टुं समर्थोः यः सर्वज्ञानमयः स एव समर्थोऽज्ञस्तु तस्मिंस्तिमिरे न ध्रियेतासत्वसदेव भवेद् ज्ञानं विना प्रणश्येत्। ज्ञानस्य क्रीडाज्ञानं

स्वस्मिन्नात्मगोपनं शक्तेः क्रीडा दौर्बल्यं निरानन्दमानन्दस्य क्रीडात्म-गोपनं स्वात्मनि।

सानन्दं हसति जीवः सानन्दं क्रन्दत्यश्रूणि मुंचति तमोमय आनन्दे भासमान इव यातनाभिश्चेष्टमानः सानन्दं स्फुरति सानन्दं स्फुरति चेष्टमानः प्रचण्डाभी रतिभिः। पूर्णभोगार्थं तस्यानन्दस्य तामसस्यांशस्य तामसो भूत्वानन्दं गोपयति।

अज्ञानं मूलमेतस्य भावस्य सान्त एवाहमित्यशक्तो दुर्बलो दुःखी मया कर्तव्यं ज्ञातव्यं लब्धव्यं प्रयासेन तपः क्षयेण मृत्युना स त्वमेषोऽहं यत्त्वं न तदहं यत्तव शुभं तन्ममाशुभं येन तव लाभस्तेन मम हानिः त्वामेव हन्यां सुखी भविष्यामि नैव सात्त्विकोऽहं त्वामेव सुखिनं करोमि स्वदुःखेन स्वहान्या स्वमृत्युनेत्याद्यज्ञानस्य स्वरूपं मनसि।

अहंकार एव बीजमहंकारमोक्षादज्ञानमोक्षः अज्ञानमोक्षाद् दुःखान्मुच्यते आनन्दमयोऽहं सोऽहमेकोऽहमनन्तोऽहं सर्वोऽहमिति विज्ञायानन्दमयो भवत्यानन्दो भवति।

एष एव मोक्षः। सः मुक्तः सर्वेषां भोगान्भुंक्ते सर्वानानन्दाननन्तं भुञ्जानो न सान्तैर्वियुज्यते सान्तानि भुञ्जानो नानन्तेन हीयते स एको भवति वहुर्भवति स ह्यजो जायत इव जायमानोऽपि न जायते न बध्यते न जन्म तस्य विद्यते आत्मन्यात्मात्मना प्रकाशयाम्यात्मानमिति ज्ञानाद् विमुक्तः क्रीडते।

लीलार्थं हि जगदानन्दार्थं लीलामय इति लीलां कुरुतानन्दस्य पुत्राः युक्ताः क्रीडतानन्दं भुङ्क्तैकं भोग्यं भगवन्तं प्राप्य भुङ्क्त सर्ववस्तुषु।

आनन्दं हि प्रवक्ष्यामि भगवतादिष्टः। तामसमपावृत्यानन्दः प्रकाशताम् तस्य पुत्राः!

सप्त चतुष्टय

१—शांति चतुष्टय

समता शान्तिः सुखं हास्यमिति शान्तिचतुष्टयम्।

समता

आंतरिक शांतिका आधार है समता, स्थिरता और समान मनके साथ बाहरी चीजोंके आक्रमणों और आभासोंको चाहे वे प्रिय हों या अप्रिय, दुर्भाग्य और सौभाग्य, सुख दुःख, मान और अपमान, प्रशंसा या निन्दा, मित्रता या शत्रुता, पापी और सन्त या भौतिक रूपसे गरमी सर्दी इत्यादि सबको अपनानेकी क्षमता। समताके दो रूप होते हैं, सक्रिय और निष्क्रिय—बाह्य जगत्की वस्तुओंको ग्रहण करनेमें समता और उनके प्रति प्रतिक्रिया करनेमें समता।

१—निष्क्रिय—निष्क्रिय समतामें तीन चीजें होती हैं:

तितिक्षोदासीनता नतिरिति समता।

तितिक्षा

तितिक्षा है सब प्रकारके प्रिय या अप्रिय संपर्कोंको दृढ़ताके साथ सहना, जो दुखद हो उससे अभिभूत न होना और जो सुखद हो उसमें बह न जाना। स्थिरता और दृढ़ताके साथ दोनोंको उस व्यक्तिकी तरह इस तरह ग्रहण करना, रखना और सहना चाहिए जो संसारके किसी भी आक्रमणसे अधिक बलवान्, महान् और बृहत् हो, यह तितिक्षाकी वृत्ति है।

उदासीनता

उदासीनता द्वन्द्वोंके प्रति उपेक्षा है। इसका शब्दार्थ होता है

ऊपर आसीन होना, सभी भौतिक और मानसिक स्पर्शोंके ऊपर होना। उदासीन, कामनासे मुक्त होता है। वह या तो सुख दुःख, हर्ष पीड़ा, पसंद नापसंदका अनुभव ही नहीं करता या उसे लगता है कि वे उसके मन और शरीरको छू रहे हैं स्वयं उसे नहीं, वह स्वयं मन और शरीरसे भिन्न, उनके ऊपर आसीन है।

नति

नति है अंतरात्माका परमात्माकी इच्छाके प्रति समर्पण, उसके सभी स्पर्शोंको भगवान्‌के स्पर्शके रूपमें, सभी अनुभूतियोंको मनुष्यकी अंतरात्माके साथ भगवान्‌की लीलाके रूपमें स्वीकारना। नति तितिक्षाके साथ हो सकती है, दुःखका अनुभव तो हो परंतु उसे भागवत इच्छाके रूपमें स्वीकार कर लिया जाय या वह उदासीनताके साथ हो सकती है, उससे ऊपर उठकर दुःख सुखको समान रूपसे, निम्न यंत्रोंमें भगवान्‌की क्रिया मानकर अथवा आनंदके साथ भी हो सकती है यानी हर चीजको कृष्णकी लीलाके रूपमें ग्रहण करना अतः, अपने-आपमें आनंद रूप देखना। यह अंतिम स्थिति पूरे योगीकी स्थिति है। क्योंकि भगवान्‌के प्रति सतत आनंदमय नमस्कारद्वारा हम अंततः दुःख, दर्द आदिके पूरे-पूरे निष्कासन, द्वंद्वोंसे पूरी मुक्तितक जा पहुंचते हैं और छोटी-से-छोटी, अत्यंत नगण्य, जीवनके असंगत दीखनेवाले ब्यौरे और इस मानव शरीरकी अनुभूतिमें ब्रह्मानन्द पाते हैं। हम भय और दुःखसे एकदम मुक्ति पा लेते हैं—आनन्दम् हि ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन। हो सकता है कि हमें तितिक्षा और उदासीनतासे आरंभ करना हो लेकिन इस आनंदमें ही हमें समताकी सिद्धिको पूरा करना चाहिए। योगी विजय और पराजय, सफलता और कुसफलता, सुख और दुःख, मान और अपमानको सम आनंदके साथ ग्रहण करता है—पहले बुद्धि, योगद्वारा अपने-आपको अभ्यासगत मानसिक और स्नायविक प्रतिक्रियाओंसे अलग करके और विचारद्वारा स्वयं अनुभूतिकी सच्ची प्रकृति और

अपनी निजी अंतरात्माकी प्रकृतिपर जोर डालती है। यह अंतरात्मा गुप्त रूपसे आनंदमय है—सभी चीजोंमें सम आनंद भरा है। वह अनुभूतिके समस्त साधारण मूल्योंको बदलनेके लिये आता है। उसके आगे अमंगल मंगलके रूपमें प्रकट होता है, पराजय और कुसफलता भगवान्‌के तात्कालिक उद्देश्यकी पूर्तिके और अंतिम विजयकी ओर एक चरणके रूपमें, दुख-दर्द सुखके गुप्त और विकृत रूपमें प्रकट होते हैं। एक ऐसी अवस्था आती है जब स्वयं शारीरिक पीड़ा, जिसे सहना भौतिक मनुष्यके लिये सबसे कठिन होता है, अनुभूतिमें अपना स्वभाव बदल लेती है और भौतिक आनंद बन जाती है। परंतु यह अंतमें होता है जब भौतिक द्रव्यमें काराबद्ध, मनके आधीन यह मानव सत्ता अपनी अधीनतासे निकलती है, अपने मनपर विजय पाती है, अपने शरीरमें अपने-आपको पूरी तरह मुक्त कर लेती और अपने आधारके प्रत्येक भागमें अपने सच्चे आनंदमय स्वका अनुभव करती है।

२—**सक्रिय**—सभी अनुभूतियोंमें वैश्व या सम आनंदसे सक्रिय समता बनती है। इसके तीन भाग या इसकी तीन अवस्थाएं हैं:

रसः प्रीतिरानन्द इति सर्वानन्दः।

रस उस गुणका, उस आस्वादका वह संवेदनात्मक बोध है जिसे लीलाके ईश्वर, अनुभूतिके विभिन्न विषयोंमें देखते हैं और जिसके भोगके लिये वे लीलामें उसका सृजन करते हैं। प्रीति मनका सभी रसोंमें सुख है, चाहे वे प्रिय हों या अप्रिय, मधुर हों या कटु। आनंद भागवत भोग है जो समस्त मानसिक सुखोंसे श्रेष्ठ होता है, जिसके द्वारा भगवान् रसका सुख लेते हैं। आनंदमें द्वंद्वोंका विरोध एकदमसे समाप्त हो जाता है।

शान्ति

जब समता प्रतिष्ठित हो जाय केवल तभी शरीरमें शांति पूर्ण

हो सकती है। अगर मानसमें रंचमात्र भी उत्पात या कष्ट हो तो हम निश्चित हो सकते हैं कि समतामें कहीं पर उत्पात या दोष है। क्योंकि मनुष्यका मन जटिल है और जब हम बुद्धिमें अपने-आपको पूरी तरह उदासीनता या नतिमें प्रतिष्ठित कर लेते हैं तब भी अन्य भागोंमें विद्रोह, बेचैनी और खिन्नता हो सकती है। बुद्धि, मन, हृदय, स्नायु (प्राण) यहांतक कि शारीरिक आवरण तकको समताके नियमके आधीन होना चाहिए।

शांति उदासीनतापर आधारित विशाल, निष्क्रिय अचंचलता हो सकती है या नतिपर आधारित विशाल आनंदमय अचंचलता। पहला रूप निष्क्रियताकी वृत्तिके साथ संबद्ध होनेकी ओर प्रवृत्त हो सकता है अतः हमारे योगकी पूर्ति दूसरे रूपमें होनी चाहिए।

सुख

सुख, दुःख और विषादसे वह पूरी-पूरी राहत और छुटकारा है जो समता और शांतिकी पूर्णतासे आता है। पूर्णतया सिद्ध योगीके अंदर दुःखका कोई स्पर्श, अवसादकी ओर कोई प्रवृत्ति, धुंधलका या आंतरिक कुढ़न या थकान नहीं होती। वह हमेशा सात्विक प्रकाश और सुखसे भरा रहता है।

हास्य

हास्य सुखका सक्रिय पक्ष है। उसमें प्रसन्नता और प्रफुल्लताकी ऐसी सक्रिय आंतरिक स्थिति होती है जिसे कोई मानसिक या शारीरिक विरोधी अनुभूति कष्ट नहीं दे सकती। इसकी पूर्णता समताकी सिद्धिपर, भगवान्‌की छाप और मुहर है। यह हमारी आंतरिक सत्ताके अंदर जगत्‌की वाटिकामें बालवत्, शाश्वत बालक और कुमार-की तरह लीला करते हुए श्रीकृष्णकी प्रतिमा है।

२. शक्ति-चतुष्टय

इसे स्वभाव या निम्नतर निकायकी प्रकृति, मन, प्राण, अन्न, (शरीर) के आंतरिक त्रिलोककी सिद्धि कहा जा सकता है। उच्चतर दृष्टिकोणसे कहें तो यह इन तीन तत्वोंमें काम करनेवाली भागवत शक्तिकी सिद्धि है।

वीर्यं शक्तिश्चण्डीभावः श्रद्धेति शक्तिचतुष्टयम्।

वीर्य

चातुर्वर्ण्य

वीर्यका मतलब है आधारभूत स्वभाव शक्ति या भागवत स्वभावकी ऊर्जा, जो अपने-आपको चार प्रकारके चातुर्वर्ण्यमें प्रकट करती है—ब्रह्मण्यमें ब्रह्म शक्ति और ब्रह्मतेज, क्षत्रमें क्षात्रशक्ति और क्षात्रतेज, वैश्यमें वैश्य स्वभावशक्ति और तेज और शूद्र स्वभावशक्ति और तेज। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि चातुर्वर्ण्यसे प्राचीन आर्य ऋषियोंका मतलब केवल एक सामाजिक वर्गीकरण नहीं बल्कि आधारभूत स्वभावमें अपने-आपको अभिव्यक्त करनेवाले भगवान्को पहचानना है। हमारे शारीरिक भेद, हमारी सामाजिक व्यवस्थाएं उसीको मानव जीवनके प्रतीकोंमें प्रकट करनेका प्रयास मात्र हैं, बहुधा अस्तव्यस्त प्रयास, बहुधा एक हास्यानुकृति, वे जिस भागवत सत्ताको अभिव्यक्त करनेकी कोशिश करते हैं उसकी विकृति होती है। हर एक मनुष्यके अंदर चारों धर्म होते हैं परंतु एक प्रमुख होता है। वह एकमें पैदा हुआ है, वही उसके चरित्रका पहला सुर होता है और उसके समस्त कार्योंके प्रकार और ढांचेका निश्चय करता है। बाकी सब प्रमुख प्रारूपके आधीन रहता है और उसे पूरक प्रदान करता है। कोई ब्राह्मण तबतक

पूरा ब्राह्मण नहीं हो सकता जबतक उसके अंदर क्षात्रतेज, वैश्व शक्ति और शूद्र शक्ति भी न हो। परंतु इन सबको उसके अंदर उसके ब्रह्मण्यकी पूर्णताकी सेवा करनी चाहिए। भगवान् अपने-आपको चार प्रजापति या गीताके चत्वारः मनवः के रूपमें प्रकट करते हैं परंतु मनुष्य इन चारमेंसे किसी एकके अंशके रूपमें पैदा होता है। पहलेका वैशिष्ट्य होता है प्रज्ञा और विशालता, दूसरेका शौर्य और शक्ति, तीसरेका कौशल और भोग और चौथेका कर्म ओर सेवा। पूर्ण बनाया गया मनुष्य अपने अंदर चारों क्षमताओंको विकसित करता है और एक ही साथ अपने अंदर प्रज्ञा और विशालताके देव, शौर्य और शक्तिके देव, कौशल और भोगके देव तथा कर्म और सेवाके देवको धारण करता है। केवल एक ही प्रमुख होता है और दूसरोंको मार्ग दिखाता और उनका उपयोग करता है।

ब्रह्मतेज

ज्ञानलिप्सा ज्ञानप्रकाशो ब्रह्मवर्चस्यं स्थैर्यमिति ब्रह्मतेजः।

लिप्सा

मैं इन परिभाषाओंमें प्ररूपके प्रमुख गुण ही गिनाता हूं। पूर्ण योगी अपनी प्रकृतिको निष्क्रियतातक नहीं उतार लाता बल्कि वह उसे पूर्ण बनाता और ऊंचा उठाता है ताकि उसे लीला करते हुए ईश्वरकी सेवामें प्रस्तुत कर सके। ईश्वर इस ज्ञान-लिप्साको स्वीकार करके और कामनासे शुद्ध करके उसे ज्ञानके प्रकाशकी ओर भागवत ललकमें वदल देते हैं। सिद्धिकी भाषामें लिप्साका नया अर्थ होता है, व्यक्तिमें स्थित ब्रह्मका निष्काम भावसे विषयके अंदरके ब्रह्मतक प्रसार।

ज्ञानप्रकाश

ज्ञानमें पराविद्या और अपरा विद्या दोनों आ जाती हैं यानी स्वयं

ब्रह्मका ज्ञान और जगत्का ज्ञान। लेकिन सांसारिक मनके इस क्रमको उलटकर योगी पहले ब्रह्मको जानना चाहता है और फिर ब्रह्मद्वारा जगत्को। उसके लिये वैज्ञानिक ज्ञान, सांसारिक जानकारियां और प्रशिक्षण गौण हैं, जैसा सामान्य विद्वान् या वैज्ञानिकके लिये होता है उस तरह यह उसके लिये प्रथम उद्देश्य नहीं है। फिर भी हमें इन चीजोंको भी अपने क्षेत्रमें लेना चाहिए और जगत्में भगवानके पूर्ण आनन्दको स्थान देना चाहिए। योगीके तरीके भी भिन्न होते हैं क्योंकि वह ज्यादा-से-ज्यादा प्रत्यक्ष दर्शन तथा विज्ञान-की क्षमताओंकी ओर प्रवृत्त होता है और वौद्धिक उपायोंकी ओर कम-से-कम। साधारण मनुष्य किसी विषयका अध्ययन वाहरसे करता है और अपने वाहरी अध्ययनके परिणामोंसे उसकी आंतरिक प्रकृतिके वारेमें अनुमान करता है। योगी विषयके अंदर प्रवेश करनेकी कोशिश करता है, उसे अंदरसे जानता है और पहलेसे ही जानी हुई आंतरिक प्रकृतिके परिणाम-स्वरूप वाह्य क्रियाके दर्शनको पुष्ट करनेके लिए, वाह्य अध्ययनका उपयोग करता है।

ब्रह्मवर्चस्य

मनुष्यके अंदरसे काम करनेवाली ज्ञानकी शक्ति है ब्रह्मवर्चस्य जो भागवत प्रकाश, भागवत शक्ति और भागवत गुणोंको मनुष्यके अंदर प्रकट करनेकी ओर प्रवृत्त होती है।

स्थैर्य

स्थैर्य ज्ञानमें स्थिरताकी क्षमता है। जो आदमी स्थिर होता है वह अपने अंदर प्रवेश करते हुए प्रकाश और शक्तिको—उनके धक्केसे लड़खड़ाये या चुंधियाये और अंधा हुए बिना—ग्रहण कर सकता है। वह अपने अंदर भागवत शक्तियोंको ले सकता और उन्हें प्रकट कर सकता है, उनके अंदर वह नहीं जाता और प्रकृतिकी बहती हुई धाराके आधीन नहीं होता। उसमें धारण-सामर्थ्य होती

है और जब ये चीजें उसमें प्रवेश करती हैं तो वह आधारकी अक्षमताके कारण उन्हें फेंक या खो नहीं देता।

क्षात्रतेज

अभयं साहसं यशोलिप्सात्मश्लाघेति क्षत्रतेजः।

अभय और साहस

अभय भयसे निष्क्रिय मुक्ति है जो साहसपूर्ण अचंचलताके साथ आनेवाले हर संकट और दुर्भाग्यके धक्केको लेता और उसका सामना करता है।

साहस सक्रिय हिम्मत और निर्भीकता है जो किसी भी साहस कार्यसे नहीं हिचकता, वह चाहे कितना भी कठिन और संकटाकीर्ण क्यों न हो। वह विरोधी शक्तियोंके बल या उनकी सफलतासे निराश या उदास और खिन्न नहीं होता।

यश

यशका अर्थ है विजय, सफलता और शक्ति। यद्यपि क्षत्रियको पराजय, विपत्ति और दुःख दर्दको स्वीकारने और उनका सामना करनेके लिये तैयार रहना चाहिए परंतु उसका उद्देश्य —वह जिस चीजकी ओर गति करता है—वह है यश। वह मैदानमें आता है कष्ट नहीं, विजय पानेके लिये। दुःख-दर्द विजयकी ओर ले जानेके साधनमात्र हैं। यहां फिर आती है लिप्सा, भगवान्की ओर प्रसार, कामनामुक्त होकर अपने भीतर भगवान्की ओर बढ़ना, क्षत्रियमें उनकी आत्मपरिपूर्तिकी ओर बढ़ना। अतः क्षत्रियको अपने अंदर ब्राह्मणके स्वभाव, ज्ञान और स्थैर्यको अभिव्यक्त करना चाहिए क्योंकि किसी रूपमें ज्ञानके बिना कामनाको शरीरमेंसे नष्ट नहीं किया जा सकता।

आत्मश्लाघा

अशुद्ध क्षत्रियमें आत्मश्लाघा है घमंड, आत्मविश्वास और अपने बलका ज्ञान। इन गुणोंके विना क्षत्रिय बलमें क्षीण हो जाता है और अपनी जाति और अपने कर्ममें प्रभावशाली बननेमें असफल रहता है। लेकिन शुद्धिके साथ यह अहंकी श्लाघा न रहकर आत्माकी, अपने अंदर स्थित दिव्य आत्माकी श्लाघा बन जाती है जो भगवान्‌की शक्ति और उस शक्तिकी महानता और उसके बल-में आनंद लेती है जब वह मानव आधारके द्वारा अपने-आपको युद्धमें अथवा कर्ममें उंडेलती है।

वैश्यशक्ति

दानं व्ययः कौशलं भोगलिप्सेति वैश्यशक्तिः।

दान और प्रतिदान वैश्यके विशेष धर्म हैं। उसकी प्रकृति प्रेमी-की प्रकृति है जो देता और मांगता है। वह अपने-आपको जगत्‌पर ऊंडेल देता है ताकि उसने जो दिया है उससे सौगुना पा ले। व्यय उसकी इस उद्देश्यसे खुले हाथों खर्च करनेकी क्षमता है, जिसमें दान करते हुए कोई तुच्छ या अपने-आपको विफल करनेवाली कृप-णता नहीं होती। कौशल वह दक्षता और प्रवीणता है जो साधनों, उपकरणों और क्रियाको इस तरह व्यवस्थित कर सकती है कि यथासंभव बड़े-से-बड़े और उत्तम रीतिसे व्यवस्थित परिणाम आ सकें। विधि, व्यवस्था, सामान्य साधनोंको लक्ष्योंके अनुकूल बनाना, आयके लिये व्यय—ये सब वैश्यके आनंद हैं। उसका उद्देश्य है भोग, अधिकार और उपभोग—केवल भौतिक वस्तुओंका ही नहीं बल्कि समस्त उपभोग, ज्ञानका उपभोग, शक्ति, आत्मदान, सेवाका उपभोग—ये सब उसके क्षेत्रमें आ जाते हैं। शुद्ध और मुक्त वैश्य परम दाता, प्रेमी और उपभोक्ता बन जाता है, वह कृष्ण-का अंश होता है जो जगत्‌का पोषण करता और उसका अधिक-से

अधिक उपयोग करता है। वह विष्णुशक्ति होता है। जैसे ब्राह्मण शिव शक्ति और क्षत्रिय रुद्रशक्ति।

शूद्रशक्ति

कामः प्रेमः दास्यलिप्सात्मसमर्पणमिति शूद्रशक्तिः।

शूद्र निम्न जगत् और उसकी प्रकृतिमें पूरी तरहसे उतरते हुए, अपने-आपको भौतिक द्रव्य तथा भौतिक जगत्‌में भगवान्‌की लीलाको कार्यान्वित करनेके लिये पूरी तरहसे देते हुए भगवान् है। इस दृष्टिसे शूद्र अन्य सभी शक्तियोंसे अधिक महान् है क्योंकि उसकी प्रकृति सीधी संपूर्ण आत्मसमर्पणकी ओर जाती है। परंतु उसकी वद्ध शक्तिने अपने-आपको ज्ञान, शक्ति और कौशलसे काट लिया है और अपने-आपको तमोगुणमें खो दिया है। उसे अपने अंदर फिर से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको प्राप्त करना है। और उन्हें भगवान्, मनुष्य, सभी प्राणियोंकी सेवामें अर्पित कर देना है। उसके अंदर कामके तत्वको भौतिक कल्याण और विषयासक्तिकी खोजसे हटाकर जड़ भौतिकमें अभिव्यक्त भगवान्‌के आनंदमें वदल देना चाहिए। प्रेमके तत्वको अपने-आपको पाना और दास्य लिप्सा तथा आत्मसमर्पणमें यानी अपने-आपको भगवान्‌के प्रति और मनुष्यमें स्थित भगवान्‌के प्रति अर्पणमें तथा भगवान्‌की ओर मनुष्यमें स्थित भगवान्‌की निःस्वार्थ सेवामें परिपूर्ण करना चाहिए। शूद्र कलियुगका प्रधान भाव है जैसे वैश्य द्वापरका, क्षत्रिय त्रेताका और ब्राह्मण सत्ययुगका।

शक्ति

शक्ति शरीरके विभिन्न भागोंकी पूर्णता है जो उन्हें अपना कार्य पूर्ण और स्वतंत्र रूपसे करने योग्य बनाती है।

देहशक्ति

महत्त्वबोधो बलश्लाघा, लघुता धारणसामर्थ्यमिति देहशक्तिः।

इस भौतिक विश्वमें शरीर प्रतिष्ठा है। धरतीपर भागवत लीलाको कार्यान्वित करनेके लिये जरूरी है कि उसमें विशेष रूपसे धारण-सामर्थ्य हो यानी शक्ति, आनंद, विस्तृत होते हुए ज्ञान और उस सत्ताके पूरे वेगको धारण करनेकी शक्ति, जो सिद्धिकी प्रगतिके साथ-साथ मन, प्राण और शारीरिक क्रिया-कलापमें उतरती है। अगर शरीर अयोग्य है तो वह इन चीजोंको पूरी तरह धारण करनेमें असमर्थ होगा। अति हो जाय तो भौतिक मस्तिष्क ऊपरसे आनेवाले धक्केसे इतना अधिक गड़बड़ा जाता है कि वह पागलपनतक पहुंच सकता है। परंतु यह एकदम अयोग्य और अशुद्ध आधारोंमें होता है या जब काली असुरके उसे पकड़ने और उसके द्वारा अपनी घृणित और अशुद्ध कामनाओंको पूरा करवानेके प्रयासका बदला लेनेके लिये क्रोध और उग्रताके साथ उतरती है। सामान्यतः शरीरके स्नायुतंत्र तथा भौतिक मस्तिष्ककी अक्षमता, अपने-आपको प्रगतिकी मन्दतामें, हल्की अस्तव्यस्तता और बीमारीमें, सिद्धिके ऊपर अस्थिर अधिकारको प्रकट करती है जब कि सिद्धि आती और फिसल जाती है, कार्य करती और खिसक जाती है। धारण-सामर्थ्य मन, प्राण और शरीरकी शुद्धिसे आती है। पूर्ण सिद्धि पूर्ण शुद्धिपर निर्भर है।

प्राणशक्ति

पूर्णता प्रसन्नता समता भोगसामर्थ्यमिति प्राणशक्तिः।

जब हम भौतिक संवेदनोंमें पूर्ण और स्थिर प्राणशक्तिके बारेमें सचेतन होते हैं जो स्पष्ट, प्रसन्न, उज्ज्वल और किसी भी मानसिक या शारीरिक आघातसे अविकृत रहती है तो प्राण या स्नायविक तंत्रकी सिद्धि होती है। तब भगवान् मन और शरीरपर जो भी भोग आरोपित करें हम उसके योग्य होते हैं।

चित्तशक्ति

स्निग्धता तेजःश्लाघा कल्याणश्रद्धा प्रेमसामर्थ्यमिति चित्तशक्तिः।

ये चित्तशुद्धि और चित्तकी शक्ति, या अन्तःकरणके भावात्मक भागोंके लक्षण हैं। प्रेमकी क्षमता जितनी अधिक विस्तृत और सार्वभौम होगी, एक ऐसा प्रेम जो आत्मनिर्भर और किसी कमी या लालसा या निराशासे अविकृत रहेगा, भगवान्‌में श्रद्धा जितनी स्थिर होगी और सभी चीजोंमें मंगलके रूपमें आनंद होगा, उतनी ही चित्तमें भागवत शक्ति अधिक महान् होगी।

बुद्धिशक्ति

विशुद्धता प्रकाशो विचित्रबोधो ज्ञानधारणसामर्थ्यमिति बुद्धिशक्तिः।

मन और बुद्धिपर अलग-अलग विचार करनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि शक्तिके तत्व षण्मुखी इन्द्रियों और मनकी विचारशक्ति दोनोंपर लागू होते हैं। उनका अर्थ स्पष्ट है। विशुद्धताके पूरे अर्थके लिये सातवें चतुष्टयकी शुद्धिकी व्याख्यामें देखो।

चण्डीभाव

स्वभावके अंदर अभिव्यक्त कालीकी शक्ति है चण्डी भाव।

श्रद्धा

श्रद्धा दो चीजोंमें जरूरी है:

शक्त्यां भगवती चेति श्रद्धा।

भगवान्‌के प्रेम और ज्ञानमें उनकी अपने-आपको हमारे द्वारा पूर्ण करनेकी, योगसिद्धिको पूर्ण करने, हमारे जीवन कार्यको पूर्ण करनेकी, हमारे समस्त शुभके लिये कार्यान्वित करनेकी हमारे अंदर श्रद्धा होनी चाहिए,—भले वह ऊपरी तौरसे अशुभके पर्देसे ढकी हो

—भगवान्द्वारा अभिव्यक्त शक्तिकी सामर्थ्यमें श्रद्धा होनी चाहिए। उस शक्तिकी सामर्थ्यमें जिसे भगवान् इस आधारमें उसके पोषणके लिये, भागवत ज्ञान, शक्ति और आनंदको योग तथा जीवनमें क्रियान्वित करने और परिपूर्ण करनेके लिये अभिव्यक्त करते हैं। श्रद्धाके विना शक्ति नहीं होती, अपूर्ण श्रद्धाका अर्थ है अपूर्ण शक्ति। अपूर्णता श्रद्धाकी शक्तिमें हो सकती है या उसके प्रकाशमें। पहले श्रद्धाकी पूर्ण शक्तिका होना काफी है क्योंकि हम योगके आरंभसे ही पूरे प्रकाशकी आशा नहीं कर सकते। लेकिन तव अगर हम भूल करते और ठोकर खाते हैं, तो हमारी श्रद्धाकी शक्ति हमें सहारा देगी। जव हम देख नहीं सकते तो हम जानेंगे कि भगवान्ने प्रकाशको रोक रखा है, वे हमारे ऊपर ज्ञानकी ओर एक चरणके रूपमें भूल आरोपित कर रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे वे हमारे ऊपर विजयकी ओर एक चरणके रूपमें पराजय आरोपित करते हैं।

३. विज्ञान-चतुष्टय

सिद्धियां

सिद्धियां—उनका औचित्य, संकट और उपयोग :

आधारके प्रथम दो चतुष्टयोंमें मुख्य रूपसे मानव सत्ताके केंद्रीय तत्व, उसके अन्तःकरणकी ओर संकेत किया गया है। लेकिन एक श्रेष्ठ-तर क्षमता है और एक निम्नतर उपकरण है। हर एककी अपनी-अपनी सिद्धि है। एक है विज्ञान या अति बौद्धिक क्षमता और दूसरा है शरीर। विज्ञान-सिद्धि और शरीर-सिद्धि दोनों ही अनुभूति और भागवत पूर्णताके उस क्षेत्रकी चीजें हैं जो मानवजातिकी वर्त-मान अवस्थाके लिये असाधारण हैं। वे विशेष रूपसे अपनी विरलता, कठिनाई और असाधारण स्वभावके कारण ही सिद्धियां कहलाती हैं। संदेहवादी उन्हें अस्वीकार करता है और सन्त उन्हें बढ़ावा नहीं

देता। संदेहवादी उनपर विश्वास नहीं करता और उन्हें ढोंग, कहानी या मतिभ्रम ठहराता है, जैसे चालाक पशु मनुष्यकी तर्कणाशक्तियों-पर अविश्वास करे। सन्त उन्हें हतोत्साह करता है क्योंकि उसे लगता है कि ये भगवान्‌से दूर ले जाती हैं, वह उनका उसी तरह वहिष्कार करता है जैसे धन-संपदा, शक्ति तथा सांसारिक प्राप्तियों-का वहिष्कार करता है—और एक ही कारणसे। हमारे लिये उन्हें त्यागनेकी जरूरत नहीं है और हम त्याग भी नहीं सकते क्योंकि हम भगवान्‌को उनकी जगत्-पूर्णतामें और साथ ही जगत्‌के बाहर भी खोजते हैं और जगत्‌में उनकी शक्ति और ज्ञानकी धन-संपदा भी हैं और अगर हम उनके अंदर उनकी प्रकृतिको देखते हुए और उसमें भाग लेते हुए निवास करें तो हम इनसे बच नहीं सकते। वस्तुतः योगी एक ऐसी स्थितिमें पहुंचता है जहां, जबतक कि वह संसारमें समस्त कर्मका ही त्याग न कर दे वह ज्ञान और शक्तिकी सिद्धियोंके उपयोगसे उसी तरह नहीं बच सकता जैसे एक साधारण मनुष्य, यदि वह अपना शरीर न छोड़ना चाहता हो, खाने और सांस लेनेसे नहीं बच सकता। क्योंकि ये चीजें उस विज्ञानकी स्वाभाविक क्रियाएं हैं, उस आदर्श चेतनाका लोक है जिसकी ओर वह उठ रहा है। यह उसी तरह है जैसे मानसिक क्रिया और शारीरिक गति मनुष्यके सामान्य जीवनकी स्वाभाविक क्रियाएं हैं। सभी प्राचीन ऋषियोंने इन शक्तियोंका उपयोग किया। ईसासे रामकृष्ण तक सभी महान् अवतारों, योगियों और विभूतियोंने इनका उपयोग किया है। ऐसा कोई भी महापुरुष नहीं है जिसमें जरा भी दिव्य शक्ति अभिव्यक्त हुई हो—जो एक अपूर्ण रूपमें, यह जाने बिना कि ये सर्वोच्च शक्तियां क्या हैं जिनका वह उपयोग कर रहा है—लगातार इन शक्तियोंका उपयोग न करता हो। अगर और कुछ नहीं तो वह अंतर्भास और प्रेरणाका, ईशिता शक्तिका उपयोग करता है जो ऐसे अवसर लाती है जिनकी उसे जरूरत है, ऐसे साधन लाती है जो इन अवसरोंको सफल बनाते हैं। वह व्याप्तिकी शक्तियोंका उपयोग

Institute of Advanced

करता है जिसके द्वारा उसके विचार झपटते हुए विजलीकी गतिसे जगत्में फैलते और प्रवृत्तिकी अप्रत्याशित लहरें, उसके चारों ओर और उससे दूर, पैदा करते हैं। हमें इनके उपयोगसे उसी तरह न वचना चाहिए जैसे कविको अपनी काव्य प्रेरणासे न वचना चाहिए। यह भी तो एक सिद्धि है जो साधारण मनुष्यको अप्राप्य है। यह ऐसा होगा जैसे कोई कलाकार अपनी तूलिकाका उपयोग छोड़ दे। साथ ही संदेहवादीके नकार और सन्तके त्यागका औचित्य है। इस औचित्यपर हमें ध्यान देना चाहिए। सन्त इसलिये इनका त्याग करता है क्योंकि जव ये सिद्धियां अहंकारके वशमें दुर्वल आधारमें खंडशः प्रकट होती हैं तो अहंकार वेतहाशा वढ़ जाता है। अज्ञानमय साधक यह सोच लेता है कि इन असाधारण शक्तियोंका वही स्रष्टा और विधाता है और वस्तुतः वहुत बड़ा आदमी है, (वैसे ही जैसे हम छोटे-मोटे कवि या अर्द्ध-चित्रकारमें वहुधा असाधारण अहंकार पाते हैं, क्योंकि सचमुच जिनमें महान् शक्ति होती है वे भलीभांति जानते हैं कि वह शक्ति उनकी नहीं है, भगवान्की देन है। वे अनुभव करते हैं कि भगवान्की शक्ति उनका उपयोग कर रही है, वे शक्तिका उपयोग नहीं कर रहे।) अतः अहंकारद्वारा पथभ्रष्ट किया गया साधक भगवान्का अनुसरण करना छोड़कर इन शक्तियोंका, उन्हींके लिये पीछा करता है। संदेहवादीका नकार साधारण आदमीके आशुविश्वासके कारण न्यायोचित ठहरता है। साधारण लोग इन चीजोंको चमत्कार मान लेते हैं और जहां वे नहीं होते वहां भी उनका आविष्कार कर लेते हैं और स्वयं साधकों और ऐसे लोगोंकी दुर्वलता और उनके अहंकारके कारण जो साधक नहीं हैं, अगर वे अपने या औरोंके अंदर ऐसी चीजोंकी एक झांकी भी पा लें तो वे उसे वढ़ा-चढ़ाकर फुला देते, विकृत करते और किन्हीं तुच्छ अपूर्ण अनुभूतियोंके चारों ओर सव प्रकारकी दन्तकथाएं, रहस्य, नीमहकीमी खड़ी कर लेते हैं जो संसारमें अपराध और मार्गका रोड़ा हैं: अतः हमें वड़ी सख्तीके साथ कुछ निश्चित सिद्धांतोंको

दृष्टिमें रखना चाहिए: १—कि ये शक्तियां चमत्कार नहीं हैं बल्कि प्रकृतिकी शक्तियां हैं जो अपने-आप तुरंत अभिव्यक्त करना शुरू करती हैं जब हमारे अंदर विज्ञान-पद्म खुलने लगता है, वे खाने या सांस लेनेकी शक्ति या प्रकृतिकी और किसी चीजसे अधिक शान बघारने या दर्प करनेका कारण नहीं हैं। २—कि ये पूरी तरह तभी अभिव्यक्त हो सकती हैं जब हम अहंकारको छोड़ दें और अपनी तुच्छ अलग सत्ताको भगवान्‌की सत्ताकी विशालताके अर्पित कर दें।

३—कि जब वे अशुद्ध स्थितिमें अभिव्यक्त होती हैं तो वे एक खतरनाक अग्निपरीक्षा होती हैं जिनमें भगवान् हमें डालते हैं और हम उसमेंसे तभी सुरक्षित निकल सकते हैं जब हम अपने मनको दर्प, घंमड और स्वार्थसे शुद्ध रखें और हमेशा याद रखें कि वे हमारी प्राप्ति नहीं उनके उपहार हैं।

४—कि इन शक्तियोंका स्वयं उन्हींके लिए अनुसरण नहीं करना चाहिए बल्कि उन्हें उस भागवत पूर्णताके पुष्पके एक भागके रूपमें विकसित करना या विकसित होने देना चाहिए जो भागवत कृपासे हमारे अंदर खिल रहा है।

इन सावधानियोंको रखते हुए, जब ये शक्तियां आयें तो हमें उन्हें नकारना न चाहिए बल्कि स्वीकार कर लेना चाहिए ताकि हमारे अंदर उनका उपयोग भगवान् अपने उद्देश्योंके लिए करें: हम अपने प्रयोजनोंके लिये न करें। उन्हें अपने निजी उपयोग और घंमडके लिये नहीं रखें बल्कि व्याप्ति उन्हें सारी मानवजातिपर फैला दे।

विज्ञान

ज्ञानं त्रिकालदृष्टिरष्टसिद्धिः समाधिरिति विज्ञानचतुष्टयम्।

ज्ञान

ज्ञानका अर्थ है प्रत्यक्ष और भागवत ज्ञानकी वह शक्ति जो बुद्धि

और इन्द्रियोंसे स्वतंत्र कार्य करती है या उनका केवल अधीनस्थ सहायकोंके रूपमें उपयोग करती है। वह ऐसी चीजोंको देखती है जो साधारण मनुष्यसे छिपी हुई हैं, हमें जगत्को अपनी इन्द्रियानुभूतिकी भाषामें देखना वन्द करनेमें सहायता देती है और हमें ऐसी महान् अदृश्य शक्तियों, आवेगों और प्रवृत्तियोंके वारेमें संवेदनशील वननेके योग्य वनाती है जो हमारे भौतिक जीवनके पीछे खड़ी हैं, उसका निश्चय करती तथा उसपर शासन करती है, ज्ञानके आगे जगत्की सारी यांत्रिकता अपने गुप्त तत्त्वोंको खोलकर रख देती है। पुरुषका स्वभाव, प्रकृतिकी क्रिया, हमारी सत्ताके तत्व, जगत्क्रियामें भगवान्का प्रयोजन, उनके गुणोंका सामंजस्य, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, मनुष्य, पशु और वस्तुएं, विचार, नाम-रूप, वास्तविकता और सापेक्षता—ये सव अपने-आपको उस आंखके आगे प्रकट करते हैं जिसे भगवान्ने अपने ज्ञानके सूर्यसे प्रदीप्त किया है—**ज्ञानदीपेन भास्वता**

सत्यस्य दृष्टिः श्रुतिः स्मृतिः प्रतिबोध इति ज्ञानम्।
वृत्ते तु कर्मणि च सत्यधर्म एक ज्ञानम्।

ज्ञान तीन प्रकारका है, विचारका ज्ञान, अनुभूतिका ज्ञान, (प्रतिबोध) और कर्मका ज्ञान या सत्यधर्म।

विचारके ज्ञानमें तीन शक्तियां होती हैं:

१) दृष्टि, अन्तःप्रकाश या स्वयं प्रकाश।

२) श्रुति, अन्तःप्रेरणा।

३) स्मृति—इसमें १) अंतर्भास और २) विवेक होते हैं।

दृष्टि

दृष्टि वह क्षमता है जिसके द्वारा प्राचीन ऋषियोंने वेदके सत्यको देखा। यह सत्यका प्रत्यक्ष दर्शन है जिसे विषयके अवलोकन, तर्कणा, साक्ष्य, कल्पना, स्मरणशक्ति या बुद्धिकी अन्य किसी भी क्षमताकी जरूरत नहीं होती। यह ऐसा होता है जैसे मनुष्य किसी वस्तुको देखता है और जानता है कि वह क्या है, चाहे वह कभी-कदास

उसका नाम न भी बतला सके। यह सत्यका प्रत्यक्ष प्रदर्शन होता है।

श्रुति

श्रुति वह क्षमता है जिसके द्वारा हम मानों एक ही कौंधमें विचारके रूपमें छिपे सत्यको अथवा हमारे ज्ञानके आगे प्रस्तुत वस्तु अथवा उस शब्दको देखते हैं जिसमें वस्तुका अन्तःप्रकाश हुआ है। यह वह क्षमता है जिसके द्वारा मंत्रका अर्थ मनमें या साधककी सत्तामें उदित होता है, यद्यपि जब उसने उसे पहले-पहल सुना था तब न वह उसका अर्थ जानता था, न उसे वह समझाया भी गया था। यह ऐसा है जैसे जब मनुष्य किसी चीजका नाम सुनता है तो वह उस चीजको देखे बिना ही, केवल नामसे उसकी प्रकृतिको जान लेता है। श्रुतिकी एक विशेष शक्ति है, यथार्थ और पूर्ण वाक्द्वारा विचारमें सत्यका अंतर्दर्शन।

स्मृति

स्मृति वह क्षमता है जिससे मानव मनमें छिपा सत्य ज्ञान अपने-आपको निर्णयके लिए प्रस्तुत करता है और तुरंत सत्यके रूपमें पहचान लिया जाता है। यह ऐसा है जैसे आदमी किसी चीजको भूल गया हो, जिसे वह तथ्यके रूपमें जानता था, लेकिन जिस क्षण उसके सामने उसका उल्लेख किया जाता है वह तुरंत याद आ जाती है।

अंतर्भास और विवेक

अंतर्भास वह शक्ति है जो सत्यको पहचानती है और तुरंत उसके सत्य होनेके लिए उचित कारण बतलाती है। विवेक वह शक्ति है जो तुरंत आवश्यक सीमाएं और प्रभेद खड़े कर देती है और बौद्धिक भ्रांतिको घुसनेसे और अपूर्ण सत्यको पूर्ण सत्यके रूपमें मान्यता पानेसे रोकती है।

मनुष्यकी वर्तमान अवस्थामें उसकी प्रगतिके लिए विवेककी सर्वाधिक आवश्यकता है। आजकल बड़े-से-बड़े आदमियोंमें विज्ञानकी

शक्तियां अपनी निजी शक्ति, स्थान और प्रकृतिमें काम नहीं करतीं वल्कि बुद्धिमें, बुद्धिकी सहायक और कभी-कदास पथ-प्रदर्शकके रूपमें कार्य करती हैं। जैसे ही हमें अंतर्भास या अन्तःप्रकाश प्राप्त होता है, बुद्धि, स्मृति, कल्पना, तार्किक क्षमता उसे पकड़ लेती है और उसे सत्य और भ्रांतिके मिश्रित आवरणमें छिपाना शुरू करती है और उसकी प्रकृति और उसके मूल्यांकनको शुद्ध करने और सत्यके स्तरतक ऊंचा उठानेकी जगह, सत्यको प्रकृतिके स्तरतक, मनुष्यके संस्कार और पसन्द-नापसंद तक उतार लाती है। विवेक-के विना ये शक्तियां मनुष्यके लिये उतनी ही खतरनाक हैं जितनी सहायक। वे जो प्रकाश देती हैं वह बुद्धिके प्रकाशसे अधिक चमक-दार होता है परंतु बुद्धि उनके चारों ओर जो छाया पैदा कर देती है वह प्रायः अज्ञानके उस कुहासेसे ज्यादा अंधेरा होता है जो सामान्य बौद्धिक ज्ञानको घेरे रहता है। इस तरह जो लोग अज्ञानके साथ इन शक्तियोंका उपयोग करते हैं, वे प्रायः उनकी अपेक्षा ज्यादा ठोकरें खाते हैं जो बुद्धिकी स्पष्ट किंतु सीमित रोशनीमें चलते हैं। ये शक्तियां जव हमारे अंदर काम करना शुरू करें तो हमें धीर और स्थिर होना चाहिए, हमें अपने उत्साहमें वह न जाना चाहिए। हमें विवेकको समय देना चाहिए कि वह हमारे विचारों और अंत-र्भासोंको पकड़कर उन्हें व्यवस्थित करे, बौद्धिक तत्वोंको उनके विज्ञानमय तत्वोंसे अलग करे, उनके मिथ्या विस्तार, मिथ्या सीमांकन, भूलभरे कार्यान्वयनको ठीक करे और उन्हें उचित कार्यान्वयन, उचित विस्तार और उचित सीमाएं दे और उपनिषद्के रूपकके अनुसार इनसे व्यूह या ज्ञान सूर्यकी किरणोंका विन्यास 'सूर्यस्य रश्मयः' वनाये। ज्ञान उतावले मनके लिए नहीं, केवल धीरके लिए होता है जो लंवे समयतक बैठकर अपने भंडारको इकट्ठा करता और व्यवस्थित करता रह सकता है, टुकड़ोंको लेकर उस कौएकी तरह भाग नहीं जाता जो, जिस पहले भोजनके ग्रासपर उसका मुंह पड़े उसीको लेकर उड़ जाता है।

सिद्धि

सिद्धि या अनुभूतिका ज्ञान, भावके द्वारा वस्तुओंका प्रत्यक्ष दर्शन है—सत्का भाव, सत्के सत्योंकी उपलब्धि,—चित् या ज्ञानका भाव, विचारोंके सत्योंकी उपलब्धि,—तप या शक्तिका भाव, शक्ति और कर्मके सत्योंकी सिद्धि,—आनंद या प्रेमका भाव, भाव, संवेदन और आनंदके सत्योंकी सिद्धि।

सत्यधर्म

सत्यधर्म है, ज्ञानको भाव और क्रियामें प्रवाहित करना।

त्रिकालदृष्टि

त्रिकाल दृष्टि, ज्ञानकी एक विशेष क्षमता है जिसके द्वारा उस व्यापक शक्तिको वस्तुओंकी वास्तविकता, घटनाके ब्योरों, प्रवृत्तियों-पर जगत्के भूत, वर्तमान और भविष्यपर, जगत् जैसा है, जैसा था और कालमें जैसा होगा—इन सबपर लागू किया जाता है। जैसे ज्ञान व्यापक सत्यके साथ व्यवहार करता है, उसी तरह यह तथ्य विशेषके साथ व्यवहार करती है। त्रिकालदृष्टि अनेक तरीकोंसे काम करती है :

१) सीधी, किसी साधन या बहानेके बिना, दृष्टि, श्रुति और स्मृतिद्वारा।

२) विषयपर एकाग्र रहकर—जिस पद्धतिको पांतजलि विषयपर संयम कहते हैं—यहांतक कि अवलोकक और अवलोकितका मन एक हो जाय और हम यह जान लें कि विषयमें, चाहे भूत, भविष्य, वर्तमानमें, क्या है, ठीक वैसे ही जैसे हम अपनी निजी सत्ताके अंदरकी चीजोंको जानते हैं।

३) किसी बाह्य चिह्न या किसी सांकेतिक विज्ञान जैसे सामुद्रिक, ज्योतिष, शकुन विचार आदिको साधन बनाकर। अगर इन विज्ञानों-

का उपयोग उच्चतर विज्ञानमय शक्तियोंद्वारा न हो तो इनका कुछ मूल्य नहीं होता क्योंकि ये जिन चिह्नोंका उपयोग करते हैं वे अधिकतर प्रवृत्तियोंकी ओर संकेत करते हैं और लिखित शास्त्र या कामचलाऊ नियमोंसे वास्तविक संभाव्यताओंको संभावनाकी प्रवृत्तियोंसे अलग पूरी तरह नहीं पहचाना जा सकता।

४) व्याप्ति और प्राकाम्यकी दो शक्तियोंद्वारा जिनसे वह चीज बनती है, जिसे यूरोपीय दूरबोध या टेलीपैथी कहते हैं।

अष्टसिद्धि

व्याप्तिः प्राकाम्यमैश्वर्यमीशिता वशिता महिमा लघिमाणिमोत्यष्टसिद्धिः।

अष्ट सिद्धियां तीन स्तरोंकी हैं:

१) ज्ञानकी दो सिद्धियां—व्याप्ति और प्राकाम्य

२) शक्तिकी तीन सिद्धियां—ऐश्वर्य, ईशिता, वशिता

३) शरीरकी तीन सिद्धियां—महिमा, लघिमा, अणिमा।

प्राकाम्य

प्राकाम्यका अर्थ है मन और इन्द्रियोंका पूर्ण प्रकाशन जिसके द्वारा वे शरीरकी सामान्य सीमाओंको लांघ जाते हैं और दृष्टि, श्रुति, स्पर्श आदि द्वारा और अधिक साधारणतः और अधिक आसानीसे मानसिक संवेदन और अभिज्ञताद्वारा अभिज्ञ होते हैं:

१) मन और इन्द्रियोंकी सामान्य क्रियासे छिपे हुए या दूरस्थ वस्तुओं, दृश्यों और घटनाओंके बारेमें।

२) जीवनके अन्य स्तरोंकी वस्तुओं, दृश्यों, घटनाओंके बारेमें।

३) ऐसी वस्तुओं आदिके बारेमें जो भूत या भविष्यकी हैं परंतु जिनकी प्रतिमाएं हमारे अध्ययनके विषयमें हैं।

३) अन्य लोगोंकी मन, बोध, संवेदन आदिकी वर्तमान स्थिति या

उनके विशेष विचारों, भावों, संवेदनों, अथवा ऐसी अवस्थाओं या विशिष्ट विचारों आदिके बारेमें जो भूतकालमें उनमें थे और चित्तपर जिनकी छाप रह गयी है अथवा जो उनके अंदर भविष्यमें आयेंगे, जिनका चित्र उनके चित्रके पूर्वज्ञानके भागमें बन चुका है।

व्याप्ति

प्राकाम्यके हर रूपके साथ उससे मेल खाता हुआ एक व्याप्तिका रूप होता है यानी ग्रहण और संचार होता है। उदाहरणके लिए प्राकाम्यद्वारा हम किसी औरके संवेदनोंका दर्शन पा सकते हैं। व्याप्तिद्वारा हम उन्हें अपनी चेतनापर टकोर लगाते हुए पाते हैं या हम अपने संवेदनोंको दूसरेपर प्रक्षिप्त करते हैं। प्राकाम्य है दूरसे देखनेवालेकी दृष्टि और वस्तुको देखना, व्याप्ति है उस वस्तुका संवेदन जो हमारी ओर आता है या हमारे संस्पर्शमें आता है। व्याप्तिद्वारा अपने अंदरकी किसी भी चीजको, विचार, संवेदन, शक्ति आदिको दूसरेतक पहुंचाया जा सकता है और अगर वह उसे पकड़ सके और रख सके तो वह उसे अपना बनाकर उसका उपयोग कर सकता है। यह एक तरहसे हमारे अंदरकी चीजको दूसरेपर भौतिक रूपसे फेंककर किया जा सकता है या स्वभावपर इच्छाशक्तिका प्रयोग करके उसे स्थानान्तरणके लिए बाधित करके। शिक्षक और गुरु स्वभावतः व्याप्तिकी इस शक्तिका उपयोग करते हैं जो बोलने या लिखनेसे कहीं अधिक प्रभावकारी है, लेकिन सभी मनुष्य अचेतन रूपमें इसका उपयोग करते या इससे प्रभावित होते हैं। क्योंकि हमारे अंदर हर विचार, भावना, संवेदन या चेतनाकी कोई भी गति एक लहर या धारा पैदा करती है जो उसे चारों ओरकी जगत् चेतनामें ले जाती है और वहां वह किसी भी ऐसे आधारमें प्रवेश करती है जो उसे ले सके और लेनेको तैयार हो। हमारे अभ्यासगत विचारों और भावनाओंमेंसे कम-से-कम आधे तो इस तरहके अचेतन उधार होते हैं।

ऐश्वर्य

ऐश्वर्य है इच्छाकी प्रभावकारिता जो वस्तुओं या घटनाओंपर भौतिक साधनोंकी सहायताके विना कार्य करती है। वह कार्य कर सकती है:

१) जिस वस्तुको प्रभावित करना हो उसपर चैतन्यके सीधे दबाव या तपद्वारा।

२) चेतनाके (चाहे सामान्य निम्न-प्रकृति या स्वयं वस्तुके अंदर प्रकृति-पर) प्रकृतिपर दवाव या तपद्वारा, जो सीधा वांछित परिणाम ले आये।

३) प्रकृतिपर दवाव डालकर, ताकि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करे जो परोक्ष रूपसे वांछित परिणाम लानेके लिए बाधित करें।

४) दवावके विना, केवल विचारद्वारा, जो इच्छा है, जो आज्ञा, ईश्वरकी आज्ञा है, जिसका प्रकृति यंत्रवत् पालन करती है।

अंतिम, ऐश्वर्यकी उच्चतम शक्ति और चरम सिद्धि है क्योंकि इसमें चित् और तपस् उसी तरह एक हो जाते हैं जैसे स्वयं भग-वान्की इच्छामें हैं।

ईशिता

ईशितामें इच्छाकी वही प्रभावकारिता है परंतु वह विचार या आज्ञाके द्वारा कार्य नहीं करती बल्कि हृदय और चित्तके द्वारा आव-श्यकताके दर्शन या शुद्ध लिप्सामें काम करती है। लिप्सा जिस किसी चीजकी ओर बढ़ती है या सचेतन ज्ञानके विना ही उसे जिस चीजकी जरूरत होती है वह ईशितावाले व्यक्तिमें अपने-आप आ जाती है। ईशिता अपने-आपको या तो वस्तुपर या प्रकृतिपर दबाव डालकर प्रकट करती है या केवल प्रत्यक्ष दर्शनद्वारा, जो अपने लक्ष्य-पर यांत्रिक रूपसे प्रभावकारी होता है। यहां फिरसे अंतिम ईशिता-की उच्चतर शक्ति और परम सिद्धि है।

वशिता

वशिता वस्तुपर उसकी प्रकृतिमें नियंत्रण है ताकि वह उच्चारित

शब्दके प्रति आज्ञाकारी, संचारित विचारके लिए ग्रहणशील और सुझाये गये कार्यके प्रति संवेदनशील और प्रभावकारी हो। वशिता यांत्रिक रूपमें एक प्रकृतिके दूसरेपर स्थापित नियंत्रणके द्वारा काम करती है, या कार्यके शब्द, विचार और सुझावमें प्राकृतिक शक्तिको उड़ेलनेका कार्य करती है ताकि वह दूसरोंकी प्रकृतिपर प्रभाव उत्पन्न कर सके। पिछली चीज निम्नतर और सामान्य सिद्धि है और पहली परम या पूर्णतः भागवत सिद्धि है। व्याप्ति वशिताके मुख्य साधनोंमेंसे एक है।

शक्तिकी शर्तें

ध्यान रखा जाय कि शक्तिकी कोई भी सिद्धि पूरी तरह या मुक्त रूपसे तबतक कार्य नहीं कर सकती, जबतक चित्तकी अशुद्धि, विचार या स्वभावमें अहंकार या सिद्धिके उपयोगमें कामनाका प्रभुत्व हो। ऐसी परिस्थितियोंमें शक्तियोंका कभी-कदास उपयोग हो सकता है और अनियमित प्रभावकारिता हो सकती है। यह एक ऐसी चीज है जो अपने निजी संस्कारों और अभ्यासगत प्रक्रियाओं-को छोड़ने और विज्ञानमय शक्तिके क्रियाकलापको स्वीकारनेका प्रशिक्षण देनेके लिए उपयोगी है। या निश्चित तांत्रिक क्रियाओंद्वारा सीमित शक्तियोंका नियमित और प्रभावकारी उपयोग हो सकता है। पूर्णयोगके साधकोंको इससे बचना चाहिए।

ज्ञानकी शर्तें

इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि पूर्ण ज्ञान और त्रिकाल-दृष्टि अन्तःकरणकी पूरी-पूरी शुद्धिसे ही संभव हैं। विशेष आवश्यक हैं कामनाका वहिष्कार, बुद्धिकी विशुद्धि, मनकी पूर्ण निष्क्रियता और अंतमें विज्ञानकी शक्तियोंकी पूर्ण की हुई क्रिया : इन उच्चतर शक्तियोंकी अपूर्ण और अस्थायी क्रिया हमेशा संभव है और यह धुंधले रूपमें बहुत-से ऐसे लोगोंमें पायी जाती है जो योगी या साधक नहीं हैं।

शारीरिक सिद्धियां

शारीरिक शक्तियों—महिमा, लघिमा, अणिमा—के बारेमें अभी कहनेकी आश्यकता नहीं, हालांकि वे विज्ञानके धर्मकी हैं लेकिन वे शरीरमें कार्य करती हैं और शुद्ध रूपसे सिद्धिका अंग हैं।

समाधि

समाधि वह शक्ति है जिसमें स्थिर रूपसे चैतन्यका अपने विषय-पर लगकर जाग्रत, स्वप्न सुषुप्तिकी तीनों अवस्थाओंमें ज्ञान और चेतनाके क्षेत्रको विस्तृत करना, ब्रह्मके उन तत्वोंका अनुभव करना है जिनके लिए सामान्य जाग्रत् चेतना अंधी है, और भौतिक धरती या इस जाग्रत् भौतिक चेतनासे भिन्न, अन्य लोकों या चेतनाके स्तरोंका प्रतिबिंबित चित्रों अथवा स्वयं वस्तुओंके रूपमें अनुभव करना है। समाधिपर विचारको भी अभी स्थगित रखा जा सकता है।

४—शरीर-चतुष्टय

शरीर सिद्धि

उसी तरह अभीके लिये शरीर-चतुष्टयकी व्याख्या करनेकी जरूरत नहीं है। उसके चार अंग हैं:

आरोग्यमुत्थापना सौंदर्यं विविधानन्द इति शरीरचतुष्टयम्।

तीन सामान्य चतुष्टय

ये आधार-शुद्धिके चार चतुष्टय हैं, इनके अतिरिक्त तीन सामान्य चतुष्टय हैं: —

५—कर्म-चतुष्टय या लीला-चतुष्टय

कृष्णः काली कामः कर्मेति कर्मचतुष्टयम् ।

६—ब्रह्म-चतुष्टय

सर्वमनन्तं ज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति ब्रह्मचतुष्टयम् ।

७—योग-चतुष्टय या संसिद्धि-चतुष्टय

शुद्धिर्मुक्तिर्भुक्तिः सिद्धिरिति योगचतुष्टयम् ।

इनमें अंतिम या सातवां एक साथ साधन, कुल योग और बाकी सबकी पूर्ति है। और सबको समझनेके लिए इसकी व्याख्या जरूरी है और उसे अलगसे लिया जायगा।

शांति चतुष्टय

१—समता या तो नकारात्मक होती है या सकारात्मक।

नकारात्मक—तितिक्षा, उदासीनता, नति।

सकारात्मक—समरस, समभोग, समआनंद।

नकारात्मक समता

तितिक्षा—स्थिरता और अचंचलताके साथ, सत्ताके केंद्रमें किसी प्रतिक्रियाके विना, सब प्रकारके स्पर्शोंको सहन करना, चाहे वे सुखद हों या दुखद। मन और शरीर कामना कर सकते या कष्ट पा सकते हैं परंतु साक्षी पुरुष अनाकर्षित और अविचलित रहता है। वह केवल साक्षीकी तरहसे, सारे तंत्रको ईश्वरकी तरह दृढ़ताके साथ,

एक साथ पकड़े रहता है और अचंचलताके साथ द्वन्द्वोंके निकल जानेकी इच्छा करता है। वह सुखकी लालसा या मांग नहीं करता, वह दुखदर्दका त्याग नहीं करता। जब सुख या दुख बहुत अधिक हो तब भी वह इच्छा करता है कि मन और शरीर उनसे न तो पीछे हटें न उन्हें धकेलें बल्कि दृढ़तासे सह लें। वह भूख प्यास, गरमी सर्दी, स्वास्थ्य, रोग, सफलता, असफलता, मान निन्दा आदि सभी द्वन्द्वोंके साथ इसी तरह व्यवहार करता है। वह न तो स्वागत करता और आनंद मनाता है न दुख करता और बचता है। वह समस्त जुगुप्सा, भय, संकोच, प्रतिक्षेपण, दुख, अवसाद आदिसे, यानी उन सभी साधनोंसे पिंड छुड़ा लेता है जिनके द्वारा भूत प्रकृति हमें उन सब चीजोंके विरुद्ध सावधान करती और उनसे बचानेका प्रयास करती है जो विरोधी हैं। वह उन्हें प्रोत्साहन नहीं देता। न वह आवश्यक रूपसे उन साधनोंमें बाधा देता है जो विरोधी स्पर्शोंको दूर करनेके लिए जरूरी हों। वह भौतिक रूपसे सुखद स्पर्शोंको त्यागता भी नहीं, सिवाय तब जब यह सामयिक अनुशासनके रूपमें जरूरी हो। लेकिन आंतरिक रूपसे वह सबके सामने सहन शक्तिका समान व्यवहार रखता है।

परिणाम होता है उदासीनता।

उदासीनता—उदासीनता चार प्रकारकी हो सकती है। तामसिक, राजसिक, सात्विक और त्रिगुणातीत। तामसिक उदासीनताका संबंध वैराग्य, घृणा, निराशा, प्रयाससे ऊब, प्रयासके लिए अनिच्छासे होता है। यह सच्ची उदासीनता नहीं है क्योंकि यह सबको समान रूपसे दुःखका कारण मानकर उनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें बचना चाहती है। यह जुगुप्साका सामान्यीकरण है और तितिक्षासे नहीं, उसके विरोधी तत्वसे आती है। इसे कभी-कभी राजसिक भी कहा जाता है क्योंकि, यद्यपि उसका स्वभाव तामसिक है, उसका कारण राजसिक है—कामनाकी निराशा। तामसिक उदासीनता उस वैरागीके लिए उपयोगी होती है जो किसी भी तरह जगत्से पिंड छुड़ाना चाहता है

लेकिन पूर्णताका प्रयास करनेवालेके लिए यह मार्गका रोड़ा है इसका एकमात्र उपयोग है हठी रजोगुणको अनुत्साहित करना और जब वह आये तो इस प्रयोजनके लिए इसे स्वीकारा जा सकता है। लेकिन, वह जितना भला करता है लगभग उतना ही नुकसान भी पहुंचाता है और जबतक हम उसके बिना काम न चला सकें हमारी प्रगतिके मन्द होनेकी संभावना है। राजसिक उत्सुकता और निराशासे उत्पन्न तामसिक ऊबके बीच ऊभ-चूभका क्रम लगा रहता है। इन द्वन्द्वोंकी टूट-फूटसे तामसिक उदासीनता कभी-कदास राहत देती है। सदाके लिए तामसिक उदासीनतामें बने रहना पूर्णताके लिए घातक है।

राजसिक उदासीनता प्रयासद्वारा आरोपित उदासीनता है, निश्चय-द्वारा जारी रहती है और लंबे आत्म-संयमद्वारा उसकी आदत पड़ जाती है। यह नैतिक शूरकी, तपस्वी स्टोइककी उदासीनता है। तामसिककी अपेक्षा यह अधिक सहायक है लेकिन इसे आग्रह से बनाये रखा जाय तो अंतरात्मापर इसका कठोर बना देने और संकीर्ण करनेवाला प्रभाव होता है, उसकी नमनीयता और आनंदकी क्षमता घट जाती है। अगर राजसिक उदासीनताका उपयोग किया जाय तो हमें उसे हमेशा पार करना चाहिए। यह एक उपकरण है जो आसानीसे बाधा बन सकता है।

सात्विक उदासीनता—यह ज्ञानसे उत्पन्न उदासीनता है। यह जगत्के माया अथवा लीलाके रूपमें दर्शनसे और सभी चीजोंको ब्रह्मके अंदर समान रूपमें देखनेसे आती है। यह अचंचल, प्रकाशमान, प्रयाससे मुक्त, सभी चीजोंके प्रति सहिष्णु, घटनाओंके प्रति स्मित-पूर्वक उदासीन, राजसिक और तामसिक प्रतिक्रियाओंको त्यागनेके बारेमें सावधान होती है। सात्विक उदासीनता बहुत सहायक है और लगभग अपरिहार्य स्थिति है। लेकिन उसकी सीमाएं होती हैं। वह जगत्से अलग खड़ी रहती है और मोक्षके लिए, लीलासे अपने-आपको खींच लेनेकी तैयारी है। पूर्णताके साधकके लिए यह अंतिम विश्रामस्थल होने योग्य नहीं है।

त्रिगुणातीत उदासीनता—त्रिगुणातीत उदासीनता वह है जो सभी चीजोंको समान रूपसे लेती है, सात्विक, राजसिक, तामसिक प्रतिक्रियाओंमें कोई फर्क नहीं करती, परंतु अपनी अंतरात्मामें इन सब गतिविधियोंसे, समस्त द्वन्द्वोंसे अलग रहती है। पहले उन्हें पूर्ण निष्पक्ष भावसे देखती है और उनमें भाग लेनेसे हमेशा इंकार करके मन और प्राणमें उनसे पीछा छुड़ा लेती है। वह उनके आने या जानेपर न तो खुशी मनाती है न दुखी होती है, 'न शोचति न नन्दते'। वह इन सब चीजोंको प्रकृतिकी क्रियाओंके और उनके कारणोंको ईश्वरकी इच्छाके रूपमें देखती है। यह उदासीनता समताके तीसरे तत्व नतिकी तैयारी है।

नति—नति ईश्वरकी इच्छाके प्रति समान रूपसे समर्पण है। वह सभी चीजोंको उस इच्छाकी अभिव्यक्तिके रूपमें देखती है और अपनी अहंकारमय कामनाओं, मतों, पसंदोंमें चोट खा जानेपर अंदरसे किसी भी चीजपर दुख करने या विद्रोह करनेसे इंकार करती है। उसकी सारी वृत्ति सभी वस्तुओं और घटनाओंमें भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनपर निर्भर होती है। वह सुख-दुख, स्वास्थ्य और रोग, सौभाग्य और दुर्भाग्य, स्तुति और निन्दा, प्रशंसा और बदनामी, क्रिया और निष्क्रियता, असफलता या विजयको स्वीकार करती है परंतु अपने-आपको उनमेंसे किसीके साथ आसक्त नहीं करती। नति निष्क्रियताकी तामसिक मौन स्वीकृति, असफलताकी आधीनता, जीवनके प्रति तटस्थता नहीं है। वह तो तामसिक उदासीनता है। नति सक्रिय होती है। वह जीवन और प्रयासको भगवान्‌की इच्छा और उनकी सत्ताके अंगके रूपमें स्वीकार करती है, वह सभी परिणामोंके लिए समान रूपसे तैयार रहती है। उसमें फलकी लालसा नहीं होती परंतु राजसिक श्रम या तामसिक उदासीनताके बिना कर्तव्य कर्मके दिखाये गये परिणामोंके लिए काम करती है।

शांति

शांति—नकारात्मक समताकी पूर्णताको समस्त सत्तामें सुस्थापित शांतिसे मापा जाता है। अगर हृदय और प्राणमें पूरी-पूरी अचंचलता और प्रशांतता हो, कष्ट, अस्तव्यस्तता, उत्कण्ठा, दुःख, अवसाद आदिकी कोई प्रतिक्रिया न हो तो हम निश्चित हो सकते हैं कि नकारात्मक समता पूर्ण हो गयी है। अगर कोई ऐसी गड़बड़ हो तो यह इस बातका चिह्न है कि तितिक्षा उदासीनता या नतिमें कहीं कोई अपूर्णता है। हो सकता है कि अपूर्णता सत्ताके केंद्रमें न हो, बल्कि उसके बाहरी भागोंमें हो। तब केंद्रमें स्थिर प्रशांतता रहेगी लेकिन सतह-पर गड़बड़ हो सकती है। ये ऊपरी गड़बड़ें उग्र भी हो सकती हैं और अंदर प्रतिष्ठित शांतिको छिपा सकती हैं लेकिन वह फिरसे उभर आती है। उसके बाद गड़बड़ अपनी घनतामें अधिकाधिक पतली और शक्तिमें दुर्बल होती जाती है। इसका अन्त होता है अंतरात्मामें, कभी-कदास शक्ति, साहस, श्रद्धा और आनंदके अवसादमें, जो नकारात्मक और प्रायः बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके होता है और बादमें पूरी तरह गायब हो जाता है।

नकारात्मक समता और शांति सकारात्मक समता और आनंदके लिए आवश्यक तैयारी है। इस आधारके बिना हमेशा यह संभावना बनी रहती है कि आनंद अपनी अवधिमें अनिश्चित और अपनी समग्रतामें अपूर्ण हो। अतः सभी चीजें—सभी स्पर्शोंमें सहनशीलता, सभी द्वन्द्वोंके प्रति उदासीनता, भागवत इच्छाकी सभी गतिविधियोंके प्रति समर्पण और पूर्ण आंतरिक शांति तथा अचंचलता पूर्णताके पहले कदम हैं।

नकारात्मक समता और शांति शुद्धिका परिणाम और मुक्तिकी शर्त हैं।

सकारात्मक समता

नतिके आधारपर हम सकारात्मक समताकी ओर बढ़ते हैं जिसका मतलब है सम आनंद। इसका आधार है आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान जिससे हम समस्त विश्वको एकमेव सत्ताके रूपमें देखते हैं जो अपने-आपको अनेक रूपों और क्रियाओंमें अभिव्यक्त करती है। अतः यह एकमेव सभी सत्ताओंकी आत्मा, मेरी आत्मा और साथ ही अन्य सबकी, मित्र और शत्रु, सन्त और पापी, मनुष्य, पक्षी और पशु, वृक्ष और पत्थरकी आत्मा है—अभिव्यक्तिमें सभी चीजें मेरी आत्माके रूप और क्रिया-कलाप हैं। और फिर यह आत्मा विश्वका स्वामी, पुरुषोत्तम, दिव्य विष्णु, शिव, या कृष्ण है, हर व्यक्तिगत अंतरात्मा उनका एक सचेतन केंद्र है। वह अंतरात्मा प्रभुके साथ अपने ऐक्यके बारेमें अभिज्ञ है, साथ ही विश्वमें उनसे अपने अलगावके बारेमें भी सचेतन है। अभिव्यक्ति उन भगवान्‌की लीला या खेल है जो अपनी सत्तामें सर्वआनंद है। अतः यह लीला भी केवल सत् और चित्‌की ही नहीं, आनंदकी भी लीला है। मन, प्राण और शरीरके अहंभावसे उत्पन्न द्वित्त, दुःख और दर्दका सृजन करते हैं। हमें अपने-आपको इस आत्माके साथ एक करना चाहिए, इस प्रभु और एक-मेवके साथ और उनके अंदर सभी चीजोंके साथ एक करना चाहिए, उन्हें अपनी आत्माके रूपमें देखना चाहिए ताकि हम दुःखसे पिंड छुड़ाकर दिव्य आनंदका भोग कर सकें। लेकिन पहले यह जरूरी है कि हम लीलाको उसके सभी ब्यौरों और घटनाओंके साथ, विद्रोहके बिना समान रूपसे स्वीकार करें। यह नतिसे आता है। तितिक्षा इन्द्रिय-मन और शरीरद्वारा समान स्वीकृतिकी वृत्ति है, उदासीनता है मन और हृदयद्वारा समान रूपसे स्वीकृतिकी वृत्ति और नति है अंतरात्मा द्वारा समान रूपसे स्वीकार करनेकी वृत्ति। अंतरात्मा सभी चीजों-को सर्व-आनंदमय प्रभुकी लीलाके रूपमें, परम आत्मा और ईश्वरकी

इच्छाके रूपमें स्वीकार करती है। वह कर्म और कर्मफलको भी उनसे आसक्त हुए बिना स्वीकार करती है। लेकिन अनासक्त होते हुए भी उसे सभी चीजोंमें आनंद लेना सीखना चाहिए, जैसे प्रभु उनमें आनंद लेते हैं।

पहला आनंद है साक्षीका, जो समस्त विश्वकी समस्त क्रियाको और स्वयं अपनी क्रियाको इस तरह देखता है जैसे किसी लीला या नाटकको देखता है, बुद्धि, इन्द्रियों और सौंदर्यग्राही क्षमताओंद्वारा सारी चीजका रस लेता है। सभी चीजें, सभी घटनाएं, वैश्व सत्ताके अमुक गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं। भगवान् अनंत गुण हैं। गुलाब रूप, गंध तथा अन्य कम स्पष्ट गुणोंकी अभिव्यक्ति है। हर एक विशेष रूपके रसकी, दिव्य आनंदकी छाप लिये है।

(अपूर्ण)

हमारे प्रकाशन

१. वच्चोंके श्रीअरविंद		रु. १.००
२. हमारी मां		रु. २.००
३. राजकुमार—एक प्रतीकात्मक नाटक		रु. २.००
४. शिक्षाके आयाम		रु. २.००
५. शिक्षाके आधार		रु. २.००
६. मंत्र वचन		रु. २.००
७. युवकोंसे		रु. २.००
८. नर-नारी		रु. ५.००
९. समयकी आवश्यकता		रु. २.००
१०. योगके तत्त्व		रु. ५.००
११. श्रीअरविंद और उनका आश्रम		रु. ४.००
१२. माताजी : एक झलक		रु. २.००
१३. श्रीअरविंद : जीवन और दर्शन		रु. ६.००
१४. श्वेत कमल (प्लास्टिक आवरणके साथ)	...	रु. २२.००
अजिल्द	...	रु. २०.००
१५. लाल कमल सजिल्द		रु. ३५.००
अजिल्द		रु. ३०.००
१६. माताजी और श्रीअरविंद		रु. २५.००
१७. जगन्माता		रु. ४.००
१८. माताजी और भारत		रु. २.००
१९. माताजीकी चित्रावली		रु. ३.५०
२०. जीवनका लक्ष्य (भाग १)		रु. २.००
२१. जीवनका लक्ष्य (भाग २)		रु. २.००
२२. रोग (भाग १)		रु. २.००
२३. रोग (भाग २)		रु. २.००
२४. भोजन		रु. २.००

२५.	सत्य	रु. २.००
२६.	कर्म	रु. २.००
२७.	मृत्यु	रु. २.००
२८.	ध्यान	रु. ३.००
२९.	प्रार्थना और मंत्र	रु. ३.००
३०.	समर्पण और कृपा	रु. २.००
३१.	भारत	रु. २.००
३२.	धन	रु. २.००
३३.	नींद और स्वप्न	रु. २.००
३४.	श्रीमां और उनका आश्रम	रु. २.००
३५.	सावित्री (संपूर्ण)	रु. ८०.००
३६.	माताजी और श्रीअरविंद अपने बारेमें	रु. ३.००
३७.	गीताकी भूमिका	रु. ४.००
३८.	प्रकृतिकी कानाफूसी	रु. ३.००
३९.	मानवसे अतिमानवकी ओर	रु. १७.७५
४०.	सप्त चतुष्टय ...	रु. ४.००

कहानियां जो कुछ और भी कहती हैं

४१.	प्रेमकी विजय	रु. ३.००
४२.	नया अभियान	रु. ३.००
४३.	गुलदस्ता	रु. ३.००
४४.	नया तराना	रु. ३.००
४५.	कालके गर्भमें ...	रु. ३.००

श्रीमातृवाणी—श्रीमाताजीके ग्रंथोंका १५ खंडोंमें संग्रह मूल्य रु. ५००.००

मासिक पत्र

पुरोधा— रु. १४.०० वार्षिक; आजीवन २२५.००

अग्निशिखा—रु. 10.०० वार्षिक; आजीवन १६५.००

Institute of Ad...
99612
4-12-2000
SHIMLA